स्थापित जुलाई 1988

ISSN No. 0971-796X

प्राकृतविद्या

वर्ष 32, अंक 3

जुलाई-सितम्बर 2020 ई.

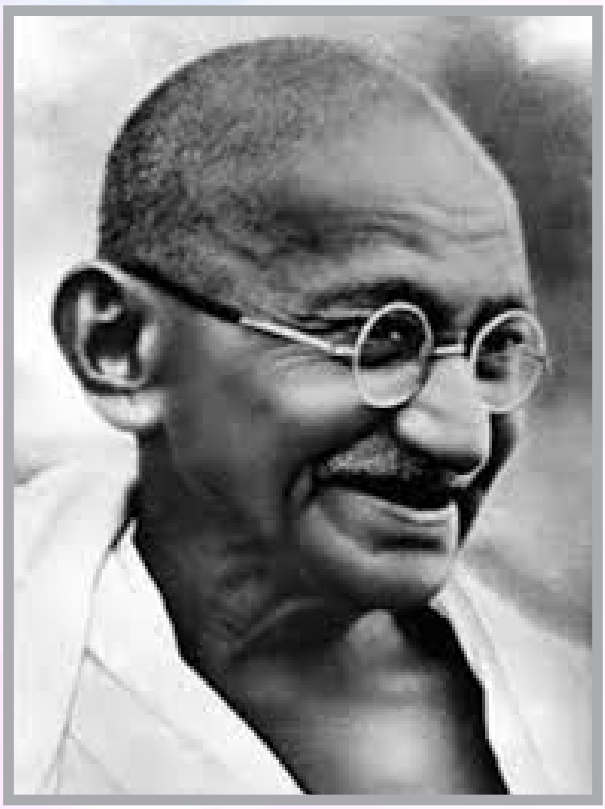

जैनधर्म के प्रभावक राष्ट्रपिता महात्मा गांधी

"पहिले मैं मानता था कि मेरे विरोधी अज्ञान में हैं। आज मैं विरोधियों को प्यार करता हूँ, क्योंकि अब मैं अपने को विरोधियों की दृष्टि से भी देख सकता हूँ। मेरा 'अनेकान्तवाद' सत्य और अहिंसा इन युगल सिद्धान्तों का ही परिणाम है।"

—महात्मा गांधी, 'हरिजन', 21.7.46

चरण छतरी का अनावरण

ISSN No. 0971-796 ×

प्राकृत-विद्या
पागद-विज्जा

PRAKRIT-VIDYA
Pāgada-Vijjā

प्राकृत, अपभ्रंश आदि प्राच्य भारतीय भाषाओं की हिन्दी तक की विकास-यात्रा दर्शानेवाली समर्पित त्रैमासिकी शोध-पत्रिका

A quarterly journal devoted to researches on the development of Prakrit, Apabhramsha and Ancient Indian Languages upto Hindi Language

वीर निर्वाण संवत् 2546 जुलाई-सितम्बर 2020 वर्ष 32 अंक 3
Veer Nirvan Samvat 2546 July-September 2020 Year 32 Issue 3

आचार्य कुन्दकुन्द समाधि-संवत् 2025

सम्पादक-मण्डल

श्री पुनीत जैन
(नवभारत टाइम्स)

डॉ. रमेश कुमार पाण्डेय
(श्री ला.ब.शा.रा. संस्कृत विद्यापीठ)

मानद सम्पादक

प्रो. (डॉ.) वीरसागर जैन
(श्री ला.ब..शा.रा. संस्कृत विद्यापीठ, नई दिल्ली)

प्रबन्ध सम्पादक

श्री कमलकान्त जैन

प्रकाशक
श्री अनिल कुमार जैन
महामन्त्री
श्री कुन्दकुन्द भारती ट्रस्ट
18-बी, स्पेशल इन्स्टीट्यूशनल एरिया,
नई दिल्ली-110067
फोन : (011) 26564510, 46062192
ई-मेल: kundkundbharti@gmail.com

Publisher
ANIL KUMAR JAIN
Secretary
Shri Kundkund Bharti Trust
18-B, Special Institutional Area
New Delhi-110067
Phone: (011)26564510, 46062192
E-mail: kundkundbharti@gmail.com

इस प्रति का मूल्य बीस रुपया

अनुक्रम

क्र.सं.	शीर्षक	लेखक	पृ.सं.
1.	मंगलाचरणः गणधरवलय मंत्र		3
2.	सम्पादकीय : आचार्यश्री का गुणानुवाद	प्रो. वीरसागर जैन	5
3.	जैनधर्म, अहिंसा एवं महात्मा गांधी	आचार्य विद्यानन्द मुनिराज	10
4.	जैन योग में बहिरंग तप	आचार्य श्रुतसागर मुनिराज	22
5.	अघ-नाशक जिन-भक्ति	आचार्य विशुद्धसागर मुनिराज	36
6.	आपदा-प्रबंधन में जैनदर्शन व संस्कृति की उपादेयता	डॉ. जिनेन्द्र जैन	38
7.	प्राकृत-साहित्य में समरसता-विमर्श	प्रो. कल्पना जैन	49
8.	जैन कर्म सिद्धांत वर्तमान सन्दर्भ में	डॉ. अनिलकुमार जैन	58
9.	गाहारयणकोस में अंकित मानवीय गुण	डॉ. सुमतकुमार जैन	69
10.	समयपाहुड ग्रंथ में जीव संबंधी लोक-प्रचलित मान्यताओं का विश्लेषण	सोनू जैन	77
11.	वैशाली : जन्मभूमि महावीर की	डॉ. अरविन्द महाजन	86
12.	समाचार-दर्शन		93

'प्राकृत-विद्या' के सम्बन्ध में महत्त्वपूर्ण निवेदन

'प्राकृत-विद्या' (त्रैमासिक शोधपत्रिका) वर्तमान विषम परिस्थितियों में भी नियमित रूप से प्रकाशित हो रही है, परन्तु अभी डाक-व्यवस्था सुचारु रूप से नहीं चल रही है, अतः इसकी मुद्रित पुस्तकें आप तक नहीं पहुँच पा रही हैं, केवल इसकी Soft Copy ही प्रसारित हो रही है। डाक-व्यवस्था ठीक होने के बाद मुद्रित पुस्तकें भेजी जाएँगी।

जो लोग अभी तक इसके सदस्य नहीं बने हैं उनसे निवेदन है कि वे शीघ्र ही 1500/- रुपये जमा करके इसके आजीवन सदस्य बन जाएँ। विशेष जानकारी के लिए श्री कमलकांत जैन 9871138842 से सम्पर्क करें।

'प्राकृत-विद्या' के प्रत्येक अंक में कुछ सामग्री भगवान महावीर की जन्मभूमि वैशाली से संबंधित भी प्रकाशित की जाती है, ताकि लोग उसके महत्त्व को भी ठीक से समझ सकें। यदि आपके पास भी भगवान महावीर जन्मभूमि के संबंध में कोई भी विशेष जानकारी या लेख आदि हों तो हमें प्रकाशनार्थ भेजें। कृपया एक बार वहाँ की यात्रा भी अवश्य करें, अब वहाँ पर भव्य मन्दिर एवं आवास-भोजनादि की भी सुन्दर व्यवस्था हो गई है। 'प्राकृत-विद्या' के संबंध में आपके अमूल्य अभिमतों एवं सुझावों का भी हार्दिक स्वागत है। कृपया अवश्य भेजें।

गाहारयणकोस में अंकित मानवीय गुण

—डॉ. सुमतकुमार जैन*

सुभाषित एवं सूक्तियों का संकलन भारतीय साहित्य की एक परम्परा रही है और सांस्कृतिक पहचान भी। इसी परम्परा और पहचान के अन्तर्गत गाथासप्तशती और वज्जालग्गं जैसी सर्वप्राचीन बहुप्रसिद्ध रचनाएँ प्राप्त होती हैं। इस परम्परा को आगे बढ़ाते हुए 12वीं शताब्दी के प्रखर एवं प्रज्ञापुरुष जिनेश्वरसूरि ने महाराष्ट्री प्राकृत में 'गाहारयणकोस' की रचना कर सुभाषितों का संग्रह किया है।

वस्तुतः गाहारयणकोस एक संकलित ग्रन्थ है। रचनाकार ने स्वयं ग्रन्थ के प्रारम्भ में लिखा है कि यह कोश-ग्रन्थ सुकवियों के वचनरूपी समुद्र से अनेक सूक्तिरत्नों को ग्रहण करके बनाया गया है—

सुकइवयणमहण्णवाओ विचित्तरयणाणि सुत्तिरयणाणि।
गहिऊण कओ कोसो अओ अ गाहारयणकोसो॥2॥

गाहारयणकोस में 838 गाथाएँ हैं, जिन्हें 58 भागों में विभाजित किया गया है। जिस प्रकार वज्जालग्गं को वज्जा अर्थात् पद्धति नाम से 96 वज्जाओं में विभाजित किया है, उसी प्रकार गाहारयणकोस को भी 58 भागों में बांटा गया है एवं इनका नाम प्रक्रम दिया गया है। सभी प्रक्रमों के नाम इस प्रकार हैं—

जिनेश्वरस्तुति, ब्रह्मस्तुति, विष्णुस्तुति, महेश्वरस्तुति, सरस्वतीस्तुति, काव्यप्रशंसा, समुद्रप्रक्रम, वडवानलप्रक्रम, कृष्णक्रीड़ाप्रक्रम, नगरवर्णनप्रक्रम, सुजनप्रक्रम, दुर्जनप्रक्रम, सुस्वामिप्रक्रम, लक्ष्मीप्रक्रम, दानप्रक्रम, कुस्वामिप्रक्रम, कृपणप्रक्रम, दारिद्र्यप्रक्रम, स्थैर्यधैर्यादिगुण, राजवर्णकप्रक्रम, राजनीतिप्रक्रम, छेकप्रक्रम, हियालीप्रक्रम, वेश्याप्रक्रम, सर्वाङ्गस्त्रीवर्णनप्रक्रम, शृङ्गारप्रक्रम, नयनप्रक्रम, स्नेहप्रक्रम, दूतीप्रक्रम, प्रेमप्रक्रम, मानप्रक्रम, उभयानुगतचाटुप्रक्रम, मानिनी-प्रत्युत्तरप्रक्रम, विरहप्रक्रम, सूर्यास्तप्रक्रम, चक्रवाकप्रक्रम, खद्योतप्रक्रम, चन्द्रप्रक्रम,

*असिस्टेंट प्रोफेसर— जैनविद्या एवं प्राकृत विभाग, मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर-313001 मो. 9024764349 ई-मेल : drsumat.jain@gmail.com

कुमुदप्रक्रम, प्रभातप्रक्रम, सूर्योदयप्रक्रम, कमलिनीप्रक्रम, अलिमालतिकाप्रक्रम, प्रावृट्प्रक्रम, शरत्प्रक्रम, हेमन्तप्रक्रम, शिशिरप्रक्रम, बसन्तप्रक्रम, ग्रीष्मप्रक्रम, असतीप्रक्रम, वृक्षजातिप्रक्रम, पर्वतप्रक्रम, सिंहप्रक्रम, गजप्रक्रम, करभप्रक्रम, धवलप्रक्रम, मुत्कलप्रक्रम, शान्तरसप्रक्रम– इन 58 प्रक्रमों के अन्तर्गत सम्बद्ध गाथाएँ उपलब्ध हैं।

गाहारयणकोस से मानव-जीवन का समाज एवं प्रकृति से व्यापक सम्बन्ध पता चलता है। इसमें मानव के कल्याणार्थ अनेक तथ्यों पर प्रकाश पड़ता है। इनमें मुख्य रूप से मानवीय गुणों के अन्तर्गत धार्मिक-समन्वय, परोपकारवृत्ति, संतोषवृत्ति, नारी-सम्मान, सहिष्णुता, अनासक्ति, स्नेह/प्रेम, दान, पर्यावरण-संवर्द्धन आदि तथ्यों की विवेचना की गई है।

मानवीय गुण

मानवीय गुण अभिव्यक्ति के अप्रतिम घटक हैं। गाहारयणकोस में वर्णित संस्कृति-मूलक तत्त्व किसी-न-किसी रूप में मानव के जीवन से ही सम्बन्ध रखते हैं। 'गुण' का मानव जीवन से घनिष्ठ सम्बन्ध है, जिनके परिपालन के विना मानव-जीवन श्रेष्ठ नहीं कहा जा सकता है। शब्दकोशों के अनुसार मानवीय गुण से आशय मनुष्यसम्बन्धी या मनुष्य का गुण अथवा आचरण। जहाँ कहीं भी मानवीय गुणों का संदर्भ आता है, उसमें मानवता निहित रहती है। हम वस्तुओं के संदर्भ में मूल्यगत चिंता नहीं करते हैं। मूल्यगत चिंता केवल मनुष्य के संदर्भ में ही संभव है। जैसा कि सुभाषित में भी कहा है कि आहार, निद्रा और मैथुन मनुष्यों और पशुओं में समानरूप से विद्यमान होता है, किन्तु मनुष्यों का विवेक गुण उसे पशुओं से भिन्न बनाता है। विवेकपूर्ण आचरण का आशय उस व्यवहार से है, जिससे मनुष्य मूल्यवान बनता है। कठोपनिषद् में श्रेयस् और प्रेयस् के सम्बन्ध में उल्लिखित है कि श्रेयस् का अर्थ शुभ आचरण और प्रेयस् का इन्द्रियानुकूल आचरण से है। प्रेयस् तो पशु अपनाते हैं, लेकिन श्रेयस् केवल मनुष्य ही अपनाता है।

मानव को जिन साधनों से सार्वभौमिक सुख की प्राप्ति होती है, उन्हीं साधनों की गणना मानवीय गुणों में की जाती है। वे सभी जो हमारे अनुभव में मूल्यवान् हैं, मनुष्य के हित में है। मनुष्य के अपने लिए, अपने वास्तविक स्वरूप के लिए शुभ हैं, वह मानवीय गुण हैं।[2]

गाहारयणकोस में संकलित गाथाओं में कवियों के गुणात्मक अनुभवों को प्रस्तुत किया गया है। इसमें परोपकारवृत्ति, संतोषवृत्ति, नारी-सम्मान, सहिष्णुता, अनासक्ति, पर्यावरण-संरक्षण आदि प्रमुख हैं। यथा–

परोपकारवृत्ति

परोपकार से अभिप्राय है– दूसरों का उपकार, दूसरे पर अनुग्रहबुद्धि, अन्य के प्रति भलाई का भाव। परेषां सर्वसाधारणानामुपकारो हितसाधनं तस्यैकः।[3] परेषां प्राणिनामनुग्रह एवं।[4] परस्यानुग्रहबुद्धिः।[5] परोपकारेण सुरश्रियः स।[6] प्रो. सोगानी के अनुसार जनता में आस्था या विश्वास उत्पन्न होने से व्यक्ति में जो मूल्य-वृत्ति सबसे पहिले उत्पन्न होती है, वह है पर उपकार वृत्ति।[7] मूल्यों का अनुकरण करने वाला मानव लोक-हित में निश्चित ही सहायक होता है। निरपेक्ष उपकार की महत्ता का प्रतिपादन करते हुए गाहारयणकोस में वर्णित है कि उपकार करने वाले को निरपेक्ष होना चाहिए। ऐसे निरपेक्ष उपकार करने वाले विरले होते हैं।[8] यहाँ निरपेक्ष उपकारी सज्जन के लिए कहा है कि जैसे बादल वर्षा करके उपकार करते हैं, किन्तु कोई अपेक्षा नहीं करते हैं, वैसे ही सज्जन पुरुष दीन-असहाय जनों का उपकार करके निरपेक्ष रहते हैं, लोगों द्वारा अपकार करने पर भी।

संतोषवृत्ति

संतोष शब्द की व्युत्पत्ति है–सम+तुष्+घञ्। संतोषवृत्ति का अर्थ है कि जो मिले उसी से प्रसन्न रहने की वृत्ति, संतोषवृत्ति है। संतोष के अन्य अर्थ हैं– तृप्ति, प्रसन्नता और धैर्य। जीवन में जिस मानव में संतोषवृत्ति होती है, उसका जीवन संयमित एवं सुखद होता है। स्वयं के प्रति उनकी श्रद्धा-आस्था होती है, वे जीवन में दुःखों के क्षणों का धैर्य और साहसपूर्वक मुकाबला करते हैं। संतोष के विपरीत तृष्णा को वर्णित करते हुए कहा है कि जिस प्रकार पाताल की गहराई और सागर की लहरों से उस वडवानल की तृष्णा बुझती नहीं है[9]– पायालुयरगहरीहिं सायरलहरीहिं जा न उल्हविया। उसी प्रकार मानव का तृष्णारूपी गड्डा भी कभी भरता नहीं है। अतः इच्छाओं को सीमित कर संतोषवृत्ति को अपनाना चाहिए। संतोषवृत्ति को धारण करने से ही मानव सुखी होता है।

नारी-सम्मान

यह उक्ति प्रसिद्ध है– **'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः'**। प्राचीन वाङ्मय के आधार पर पं. गोपालदासजी ने स्त्री व नारी के सम्बन्ध में स्पष्ट चिन्तन प्रस्तुत किया है। वे लिखते हैं–"गृहस्थ धर्म का निर्वाह बिना स्त्री के सम्भव नहीं। जिस घर में स्त्री नहीं, उस घर में शान्ति नहीं, विश्राम नहीं एवं वहाँ लक्ष्मी का निवास सम्भव नहीं। स्त्री रत्न विषयवासना की निवृत्ति का उपकरण मात्र नहीं है, किन्तु मोक्षरूप गृहस्थमार्ग का पथ-प्रदर्शक दीपक भी है। संसार में रहकर जो इस रत्न की अवहेलना करते हैं, उन्हें सुख-शान्ति नहीं मिलती। स्त्री के समान सुदक्ष मंत्री,

स्त्री के समान सच्चा स्वामिभक्त सेवक, स्त्री के समान सुस्वादु भोजन कराने वाला पाचक, स्त्री के समान परिश्रम निवारक दिव्यमंत्र एवं स्त्री के समान चिन्ता खेद नाशक नन्दनवन के समान संसार में दूसरा पदार्थ नहीं। गृहस्थ जीवन की सफलता पति-पत्नी की अनुकूलता गृहकार्यों में सुदक्षता, गुरुजनों की सेवा और देवगुरुशास्त्र की सच्ची भक्ति में है। स्त्रियों के सम्पूर्ण गुणों की प्रतिष्ठा उनके शीलव्रत से है।[10] इसी प्रकार विनीत स्त्री की महत्ता का विवेचन करते हुए गाहारयणकोस में भी कहा है कि श्रेष्ठ कुल विनीत स्त्रियों से ही श्रेष्ठ होता है।[11]

सहिष्णुता

सहिष्णुता का अर्थ है– सहिष्णु + तल्+ टाप् अर्थात् सहन करने की शक्ति, सहारा देने की शक्ति, क्षमाशीलता।[12] द्वादशानुप्रेक्षा में सहिष्णुता के सम्बन्ध में कहा गया है कि व्रती पुरुष उपसर्ग तथा तीव्र परिषह को ऋणमोचन-कर्ज चुकाने की तरह मानता है। वह जानता है कि ये तो मेरे द्वारा पूर्वजन्म में संचित किये गये कर्मों का ही फल है।[13] दशवैकालिक सूत्र में सहिष्णुता के सम्बन्ध में कहा है कि क्षुधा, प्यास व दुःशय्या, विषमभूमि-युक्त वासस्थान, सर्दी, गर्मी, अरति, भय–इन कष्टों को मुमुक्षु अव्यथित चित्त से सहन करे। समभाव से सहन किये गये दैहिक कष्ट महाफल के हेतु होते हैं।[14]

गाहारयणकोस में सहिष्णुता के सम्बन्ध में वर्णित है कि जिस प्रकार बड़े-बड़े जीव-जन्तुओं और मत्स्यों के कठोर पूँछों के घात को गंभीर समुद्र सहन करता है, न कि क्षुद्र तालाब। उसी प्रकार गंभीर मानव कठोर कष्टों को सहन करता है, न कि तुच्छ मानव।[15] आगे एक अन्य गाथा में सहनशीलता का महत्त्व प्रतिपादित करते हुए कहा है कि जैसे कमल सूर्य की किरणों को सहन करते हुए भी सूर्य की कठोरता को ग्रहण नहीं करता, बल्कि अपनी सुकुमारता को ही धारण किये रहता है, वैसे ही मनुष्य को भी कटुता और कठोरता सहन करते हुए अपनी कोमलता बनाये रखनी चाहिए।[16]

भारतीय संस्कृति सज्जनों की प्रशंसा और दुर्जनों की निंदा में विश्वास रखती आयी है। यही चिंतन गाहारयणकोस के सज्जन और दुर्जन प्रक्रम में भी दृष्टिगोचर होता है। सज्जन पुरुष परोपकारी, सद्गुणी और शास्त्रों का घर होता है, जबकि दुर्जन इसके विपरीत प्रवृत्ति वाला होता है। कवि ने विवेचित किया है कि जिस प्रकार धनुष की डोरी दोनों छोरों की शोभा बढ़ाती है, उसी प्रकार सज्जनों की महानता विचार और चरित्र से शोभती है।[17] आगे भी द्रष्टव्य है–अनेक सद्गुण और शास्त्रों का घर सज्जन पुरुष उसी प्रकार शोभित होता है, जिस प्रकार जड़

सहित समुन्नत और अनेक पक्षियों का घर फलदार वृक्ष। और भी देखिए–

सो जयउ जेण सुयणा वि दुज्जणा इह विणिम्मिया भुवणे।
न तमेण विणा पावंति चंदकिरणा वि परभावं॥

–गाहारयणकोस, गाथा 81

अर्थात् उस ईश्वर की जय हो, जिसने सज्जनों की तरह दुर्जनों की भी इस संसार में सृष्टि की है, क्योंकि अंधकार के विना चन्द्रमा की किरणें गुणोत्कर्ष को प्राप्त नहीं होती हैं।

अनासक्ति और स्नेह भाव

आसक्ति नहीं रखना ही अनासक्ति है। आसक्ति से आशय मन का प्रबल लगाव, अनुरक्त, फँसा हुआ, विषयासक्त आदि है। अनासक्ति के सम्बन्ध में वर्णित है–

इच्छंति न नेहलवं, सकज्जलग्गा न होंति मणयं पि।
अमुणियदसाविसेसा सुयणा रयणप्पईव व्व॥

–गाहारयणकोस, गाथा 72

अर्थात् सत्कार्यों में संलग्न सज्जन पुरुष अपनी दशा विशेष (अपने महत्त्व) को थोड़ा भी न बखान करते हुए रत्नप्रदीप की तरह स्नेह (तेल) की थोड़ी भी इच्छा नहीं करते हैं।

प्रियत्वं प्रेम अर्थात् प्रियता का नाम प्रेम है।[18] स्नेह से अभिप्राय प्रेम, कृपालुता और सुकुमारता आदि है। प्रेम में द्वित्व नहीं है। वह सबको एक दृष्टि से देखता है। वह दरिद्री और धनिक में एकरूप से रहता है। प्रेम का आस्वादन होने पर समस्त संसार प्रेममय ही दिखता है।

जो व्यक्ति मूल्यों का अनुरागी होता है, उसके हृदय में गुणियों के प्रति स्नेह का उदय हो जाता है। जब व्यक्ति के हृदय में किसी व्यक्ति, समाज, देश, आदर्श आदि के लिए स्नेह पैदा हो जाता है तो उसके लिए इस जगत में कुछ भी कठिन नहीं होता है। ऐसा व्यक्ति समय पड़ने पर समुद्र भी पार कर जाता है, प्रज्वलित अग्नि में भी प्रवेश कर जाता है तथा अपने जीवन का बलिदान करने को भी तत्पर रहता है।[19]

प्रेम का महत्त्व प्रतिपादित करते हुए वर्णित है कि प्रेम संतापित होने पर नष्ट नहीं होता है। वह तो वैसे ही वर्धित होता है, जैसे नूतन सोने की कान्ति कसौटी पर तापित होने पर वृद्धिंगत होती जाती है।[20] आगे कथन है कि प्रेम अत्यधिक होने पर मनुष्य देश काल अंतर को स्मरण नहीं करता है। वह लता की तरह होता है, लता जिसे निकट देखती है, उसी से लिपट जाती है[21] अर्थात् प्रेम करने

लगती है। स्नेह की महत्ता बताते हुए कहा है कि सूर्य और दिन के स्नेह का निर्वाह ही एक मात्र प्रशंसनीय है, क्योंकि उन दोनों ने जन्म से ही एक दूसरे का विरह नहीं देखा है।[22] इसी तरह का स्नेह एवं मित्रता व्यक्ति के जीवन में होनी चाहिए। स्नेह की वाणी सरस होती है।[23]

दान

अपने और दूसरे के उपकार के लिए अपनी वस्तु का त्याग करना दान है।[24] दूसरे का उपकार हो इस बुद्धि से अपनी वस्तु का अर्पण करना दान है।[25] जो पुरुष संतोष आदि गुणों से मंडित होता है एवं गुणों में भक्ति होने से काल के अनुसार यथेष्ट वस्तु प्रदान करता है, वह श्रेष्ठ दाता गिना जाता है।[26] दाता को कल्पवृक्ष की तरह होने की प्रेरणा देते हुए गाहारयणकोस में वर्णित है कि कल्पवृक्ष यथेच्छित फलों को देता है, किन्तु कुछ कहता नहीं है, जैसे काले बादल पानी को देकर गर्जना करते हैं। इसका अभिप्राय यह है कि दान-दाता कल्पवृक्ष की तरह होना चाहिए। जैसे कहा है–

दिंति फलाइं जहिच्छं कप्पदुमा, नेय किंपि जंपंति।
धूमलियजलहरा पाणियं पि दाऊणं गज्जंति॥

–गाहारयणकोस, गाथा 133

दान के महत्त्व के सम्बन्ध में कवि कहता है कि निश्चित रूप से दिया जाता दान संस्तुत होता है।

दिंतो जलं पि जलओ स वल्लहो होइ सयललोयाणं।
निच्चं पसारियकरो करेइ मित्तो वि संतावं॥

–गाहारयणकोस, गाथा 132

अर्थात् जल देता हुआ मेघ जैसे सम्पूर्ण लोक का प्रिय होता है, किन्तु सूर्य (मित्र) अपनी प्रसारित किरणों से नित्य उसे संतापित करता है, वैसे ही दान देने वाला सम्पूर्ण लोक का प्रिय होता है, परन्तु स्वजनोंके मध्य संतापित भी होता है।

लहइ गरुयत्तणं चिय दिंताण करो विमुक्कदाणो वि।
अच्छरियं लहुयायइ सुवण्णभरिओ वि लिंताणं॥

–गाहारयणकोस, गाथा 134

अर्थात् दान को विमुक्त करता हुआ हाथ देने से निश्चय ही महानता को प्राप्त करता है। किन्तु आश्चर्य है कि स्वर्ण के भार को ग्रहण करता हुआ वह लघुता का अनुभव करता है।

पर्यावरण संरक्षण

'परितः आवृणोतीति पर्यावरणम्' इसके अनुसार जो चारों ओर से आवृत्त करता है, वह पर्यावरण है। अतः हमारे चारों तरफ जो फैले हैं, वे सब पर्यावरण के अंश हैं। इस प्रकार हमारे चारों ओर जो कुछ भी है, वह हमारा सम्पूर्ण पर्यावरण है। पर्यावरण शब्द जीवों की अनुक्रियाओं को प्रभावित करने वाली समस्त तथा जीविक परिस्थितियों का योग है। पर्यावरण जिन घटकों से बनता है, वे हैं– पृथ्वी, अग्नि, जल, आकाश तथा वनस्पति। वर्तमान में पर्यावरण का संरक्षण एक महती आवश्यकता है।

गाहारयणकोस के अन्तर्गत पर्यावरण के विविध तत्त्वों– सूर्य, चन्द्र, कुमुद, मालति, पर्वत एवं शरद्, हेमन्त, शिशिर, बसन्त, ग्रीष्म, प्रावृट्– ये छह ऋतुएँ, हाथी, सिंह, बैल पशुओं तथा वृक्ष जाति आदि के विस्तृत वर्णन विभिन्न प्रक्रमों के अन्तर्गत उपलब्ध होते हैं।

निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि गाहारयणकोस भारतीय संस्कृति में सर्वमान्य मानवीय गुणों का एक वास्तविक दर्पण-ग्रन्थ है, जिससे भारतीय संस्कृति के मूल्यवान तथ्यों पर प्रकाश पड़ता है। इससे हमारा वर्तमान सामाजिक-जीवन सुखमय और खुशहाल बन सकता है। सहनशीलता आदि जिन मानवीय गुणों का अंकन इस कोश-ग्रन्थ में हुआ है, आज भी उसकी मानव-जीवन में अत्यन्त आवश्यकता है।

सन्दर्भ ग्रन्थसूची-

1. हिन्दी शब्दकोश, सम्पा. कालिका प्रसाद, ज्ञानमण्डल लिमिटेड, वाराणसी, 2008, मानवीय शब्द, पृष्ठ 888 एवं मूल्य शब्द, पृष्ठ 913
2. भारतीय जीवन मूल्य, पृष्ठ, 3 पार्श्वनाथ विद्यापीठ, बनारस, 1995 ई.
3. जयोदय वृत्ति, 1/86, ऋषभदेव ग्रन्थालय, सांगानेर, जयपुर, 1992 ई.
4. जयोदय वृत्ति, 1/12
5. वीरोदय, 1/33, ऋषभदेव ग्रन्थालय, सांगानेर, जयपुर, 1994 ई.
6. वीरोदय, 14/27
7. चेतना के आयाम और मूल्यात्मक अनुभूति, लेख– वज्जालग्गं : सामाजिक मूल्य, पृष्ठ 115, प्राकृत भारती अकादमी, 2000 ई.
8. विरला उवयरिऊणं निरवेक्खा जलहर व्व वच्चंति।
   झिज्झंति ताण विरहे विरल च्चिय सरिपवाहो व्व।। —गाहारयणकोस, गाथा 88
9. पायालुयरगहरीहिं सायरलहरीहिं जा न उल्हविया।
   सा वडवानलतण्हा कह फिट्टइ सरिझलक्केहिं।। —गाहारयणकोस, गाथा 49

[10] भारतीय जीवन मूल्य, पृष्ठ 241

[11] विलयाउलाइं वित्थिन्नपत्तपुन्नाइं पवरसालाइं। —गाहारयणकोस, गाथा 69

[12] संस्कृत हिन्दी कोश, वामन शिवराम आप्टे, पृष्ठ 1045

[13] रिणमोयणं व मण्णइ, जो उवसग्गं परिसहं तिव्वं।
पावफलं मे एदं, मया वि जं संचिदं पुव्वं।। —द्वादशानुप्रेक्षा, गाथा 110

[14] खुहं पिवासं दुस्सेज्जं, सीउण्हं, अरइ भयं।
अहियासे अव्वहिओ, देह-दुक्खं महाफलं।।

[15] इयरो गामतलाओ पूरिज्जइ पूयराण नियरेण।
घणमच्छपुच्छघायं पुणो वि रयणायरो सहइ।। —गाहारयणकोस, गाथा 37

[16] गाहारयणकोस, गाथा—608

[17] चावगुणाणं दुण्हं रेहंति महाणुभावचरियाइं।
ऊहरसमुण्णया णं कोडीओ दिंत-लिंताणं।। —गाहारयणकोस, गाथा 79

[18] जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश, भाग 3, पृष्ठ 162

[19] चेतना के आयाम और मूल्यात्मक अनुभूति, लेख— वज्जालग्गं : सामाजिक मूल्य, पृष्ठ 118

[20] संताविय न विहडइ पिम्मं नवजच्चकंचणच्छायं।
वड्ढइ कलाहिं अहियं मिहुणाणं माणकसवट्टे।। —गाहारयणकोस, गाथा 412

[21] अइवल्लहं पि न उ सरइ माणुसं देस-कालअंतरियं।
वल्लीए समं पिम्मं जं आसन्नं तहिं चढइ।। —गाहारयणकोस, गाथा 418

[22] एक्कं चिय सलहिज्जइ दिणेस-दियहाण नेहनिव्वहणं।
आजम्ममेक्कमेक्केहिं जेहिं विरहो च्चिय न दिट्ठो।। —गाहारयणकोस, गाथा 373

[23] सरिसऽक्खराण वि अत्थि.....। —गाहारयणकोस, गाथा 378

[24] अनुग्रहार्थं स्वस्यातिसर्गो दानम्। —तत्त्वार्थसूत्र, 7/38

[25] परानुग्रहबुद्धया स्वस्यातिसर्जनं दानम्। —सर्वार्थसिद्धि, 6/42

[26] सुभाषितरत्नसंदोह, श्लोक 474 ❖❖

कोश-साहित्य का महत्त्व

''कोषश्चैव महीपानां कोशश्च विदुषामपि।
उपयोगो महान्नेष क्लेशस्तेन विना भवेत्॥''

अर्थ— जिसप्रकार राजाओं का (राष्ट्रों का) कार्य कोष (खजाना) के बिना नहीं चल सकता है, कोष के अभाव में शासन-सूत्र के संचालन में क्लेश होता है; उसीप्रकार विद्वानों को शब्दकोश के बिना अर्थग्रहण में क्लेश होता है। शब्दों में संकेत-ग्रहण की योग्यता कोश-साहित्य के द्वारा ही आती है।

—(प्राकृतभाषा और साहित्य, पृष्ठ 535)